(५) श्रीमद्भागवत

यह पुराण संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है। भक्तिशास्त्र का तो यह सर्वस्व है। यह निगम-कल्पतरु का स्वयं गलित अमृतमय फल है। वैष्णव आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के समान भागवत को भी अपना उपजीव्य माना है। वल्लभाचार्य भागवत को महर्षि व्यासदेव की 'समाधिभाषा' कहते हैं अर्थात् भागवत के तत्त्वों का प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय पर बहुत अधिक पड़ा है। इन सम्प्रदायों ने भागवत के आध्यात्मिक तत्त्वों का निरूपण अपनी-अपनी पद्धति से किया है। इन ग्रन्थों में आनन्दतीर्थ कृत 'भागवततात्पर्यनिर्णय' से जीवगोस्वामी का 'षट्सन्दर्भ' व्यापकता तथा विशदता की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। भागवत के गूढार्थ को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय ने इसपर स्वमतानुकूल व्याख्या लिखी है, जिनमें कुछ टीकाओं के नाम यहाँ दिये जाते हैं—रामानुज मत में सुदर्शनसूरि की 'शुकपक्षीय' तथा वीरराघवाचार्य की 'भागवतचन्द्रचन्द्रिका', माध्वमत में विजयध्वज की 'पदरत्नावली', निम्बार्कमत में शुकदेवाचार्य का 'सिद्धान्तप्रदीप', वल्लभमत में स्वयं आचार्य वल्लभ की 'सुबोधिनी', तथा गिरिधराचार्य की आध्यात्मिक

Scanned with CamScanner

टीका, चैतन्यमत में श्रीसनातन की बृहद्वैष्णवतोषिणी' (दशमस्कन्ध पर), जीवगोस्वामी का 'क्रमसन्दर्भ', विश्वनाथ चक्रवर्ती की 'सारार्थदर्शिनी'। सबसे अधिक लोकप्रिय श्रीधरस्वामी की 'श्रीधरी' है। श्री हरि नामक भक्तवर का 'हरिभक्तिरसायन' पूर्वार्ध दशम का श्लोकात्मक व्याख्यान है। इन सम्प्रदायों की मौलिक आध्यात्मिक कल्पनाओं का आधार यही अष्टादश सहस्रश्लोकात्मक भगवद्विग्रहरूप भागवत है।

श्रीमद्भागवत अद्वैततत्त्व का ही प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है। श्री भगवान् ने अपने विषय में ब्रह्माजी को इस प्रकार उपदेश दिया है :—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

—भाग० २।९।३२

'सृष्टि के पूर्व मैं ही था—मैं केवल था, कोई क्रिया न थी। उस समय सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूल भाव न था, असत्—कारणात्मक सूक्ष्मभाव न था। यहाँ तक कि इनका कारणभूत प्रधान भी अन्तर्मुख होकर मुझमें लीन था। सृष्टि का यह प्रपञ्च मैं ही हूँ और प्रलय में सब पदार्थों के लीन हो जाने पर मैं ही एकमात्र अवशिष्ट रहूँगा।' इससे स्पष्ट है कि भगवान् निर्गुण, सगुण, जीव तथा जगत् सब वही हैं। अद्वयतत्त्व सत्य है। उसी एक, अद्वितीय, परमार्थ को ज्ञानी लोग ब्रह्म, योगीजन परमात्मा और भक्तगण भगवान के नाम से पुकारते हैं[१]। वही जब सत्त्वगुणरूपी उपाधि से अवच्छिन्न न होकर अव्यक्त निराकार रूप से रहते हैं, तब 'निर्गुण' कहलाते हैं और उपाधि से अवच्छिन्न होने पर 'सगुण' कहलाते हैं। 'परमार्थभूत[२] ज्ञान सत्य, विशुद्ध, एक, बाहर-भीतर भेदरहित, परिपूर्ण, अन्तर्मुख तथा निर्विकार है—वही भगवान् तथा वासुदेव शब्दों के द्वारा अभिहित होता है। सत्त्वगुण की उपाधि से अवच्छिन्न होने पर वही निर्गुण ब्रह्म प्रधानतया विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा तथा पुरुष चार प्रकार का सगुण रूप धारण करता है। शुद्धसत्त्वावच्छिन्न चैतन्य को 'विष्णु' कहते हैं, रजोमिश्रित सत्त्वावच्छिन्न चैतन्य को 'ब्रह्मा', तमोमिश्रित सत्त्वावच्छिन्न चैतन्य को 'रुद्र' और तुल्यबल रज-तम से मिश्रित सत्त्वावच्छिन्न चैतन्य को 'पुरुष'

---

१. वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

—भाग० १।२।११

२. ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥

—भाग० ५।१२।११।

Scanned with CamScanner

कहते हैं। जगत् के स्थिति, सृष्टि तथा संहार-व्यापार में विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र निमित्त कारण होते हैं; 'पुरुष' उपादान कारण होता है। ये चारों ब्रह्म के ही सगुण रूप हैं। अतः भागवत के मत में ब्रह्म ही अभिन्न-निमित्तोपादान कारण हैं।

परब्रह्म ही जगत् के स्थित्यादि व्यापार के लिए भिन्न-भिन्न अवतार धारण करते हैं। आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य (भाग० २।६।४१)। परमेश्वर का जो अंश प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य कार्यों का वीक्षण, नियमन, प्रवर्तन आदि करता है, मायासम्बन्ध से रहित होते हुए भी माया से युक्त रहता है, सर्वदा चित् शक्ति से समन्वित रहता है, उसे 'पुरुष' कहते हैं। इस पुरुष से ही भिन्न-भिन्न अवतारों का उदय होता है।

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः॥
—भाग० १।४।३

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र परब्रह्म के गुणावतार हैं। इसी प्रकार कल्पावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार आदि का वर्णन भागवत में विस्तार के साथ दिया गया है।

भगवान् अरूपी होकर भी रूपवान् है (भाग० ३।२४।३१)। भक्तों की अभिरुचि के अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं (भाग ३।९।११)। भगवान् की शक्ति का नाम 'माया' है जिसका स्वरूप भगवान् ने इस प्रकार बतलाया है—

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥
२।९–३४

वास्तविक वस्तु के बिना भी जिसके द्वारा आत्मा में किसी अनिर्वचनीय वस्तु की प्रतीति होती है (जैसे आकाश में एक चन्द्रमा के रहने पर भी दृष्टिदोष से दो चन्द्रमा दीख पड़ते हैं) और जिसके द्वारा विद्यमान रहने पर भी वस्तु की प्रतीति नहीं होती (जैसे विद्यमान भी राहु नक्षत्रमण्डल में नहीं दीख पड़ता) वही 'माया' है। भगवान् अचिन्त्य शक्तिसमन्वित हैं। वे एक समय में भी एक होकर भी अनेक हैं। नारदजी ने द्वारकापुरी में एक समय में ही श्रीकृष्ण को समस्त रानियों के महलों में विद्यमान भिन्न-भिन्न कार्यों में संलग्न देखा था। यह उनकी अचिन्तनीय महिमा का विलास है। जीव और जगत् भगवान् के ही रूप हैं।

साधन-मार्ग—इस भगवान् की उपलब्धि का सुगम उपाय बतलाना भागवत की विशेषता है। भागवत की रचना का प्रयोजन भी भक्तितत्त्व का

Scanned with CamScanner

निरूपण है। वेदार्थोपबृंहित विपुलकाय महाभारत की रचना करने पर भी अतृप्त होनेवाले वेदव्यास का हृदय भक्तिप्रधान भागवत की रचना से वितृप्त हुआ। भागवत के श्रवण करने से भक्ति के निष्प्राण ज्ञान वैराग्य-पुत्रों में प्राण का ही संचार नहीं हुआ, प्रत्युत वे पूर्ण यौवन को भी प्राप्त हो गये। अतः भगवान् की प्राप्ति का एकमात्र उपाय 'भक्ति' ही है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपो त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
—११।१४।२०

परमभक्त प्रह्लादजी ने भक्ति की उपादेयता का वर्णन बड़े सुन्दर शब्दों में किया है कि भगवान् चरित्र, बहुज्ञता, दान, तप आदि से प्रसन्न नहीं होते। वे तो निर्मल भक्ति से प्रसन्न होते हैं। भक्ति के अतिरिक्त अन्य साधन उपहासमात्र हैं—

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता।
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् बिडम्बनम्॥
—७।७।५१-५२

भागवत के अनुसार भक्ति ही मुक्तिप्राप्ति में प्रधान साधन है। ज्ञान, कर्म भी भक्ति के उदय होने से ही सार्थक होते हैं, अतः परम्परया साधक हैं, साक्षाद्रूपेण नहीं। कर्म का उपयोग वैराग्य उत्पन्न करने में है। जब तक वैराग्य की उत्पत्ति न हो जाय, तब तक वर्णाश्रम विहित आचारों का निष्पादन नितान्त आवश्यक है (भाग० ११।२०।९)। कर्मफलों को भी भगवान् को समर्पण कर देना ही उनके 'विषदन्त' को तोड़ना है (भाग० १।१।१२)। श्रेय की मूलस्रोतरूपिणी भक्ति को छोड़कर केवल बोध की प्राप्ति के लिए उद्योगशील मानवों का प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल तथा क्लेशोत्पादक है जिस प्रकार भूसा कूटनेवालों का यत्न (१०।१४।४)।

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

भक्ति की ज्ञान से श्रेष्ठता प्रतिपादित करनेवाला यह श्लोक ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वशाली है, क्योंकि आचार्य शंकर के दादा गुरु श्रीगौडपादाचार्य ने 'उत्तरगीता' की अपनी टीका में 'तदुक्तं भागवते' कहकर इस श्लोक को उद्धृत किया है। अतः भागवत का समय गौडपाद (सप्तम शतक) से कहीं अधिक प्राचीन है। त्रयोदशशतक में उत्पन्न बोपदेव को भागवत का कर्ता मानना एक भयंकर ऐतिहासिक भूल है।

Scanned with CamScanner

अतः भक्ति की उपादेयता मुक्तिविषय में सर्वश्रेष्ठ है। भक्ति दो प्रकार की मानी जाती है—'साधनरूपा भक्ति' तथा 'साध्यरूपा भक्ति'। साधनभक्ति नो प्रकार की होती है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन। भागवत में सत्सङ्गति की महिमा का वर्णन बड़े सुन्दर शब्दों में किया गया है। साध्यरूपा या फलरूपा भक्ति प्रेममयी होती है जिसके सामने अनन्य भगवत्पदाश्रित भक्त ब्रह्मा के पद, इन्द्रपद, चक्रवर्ती पद, लोकाधिपत्य तथा योग की विविध विलक्षण सिद्धियों को कौन कहे, मोक्ष को भी नहीं चाहता। भगवान् के साथ नित्य वृन्दावन में ललित विहार की कामना करनेवाले भगवच्चरणचञ्चरीक भक्त शुष्क नीरस मुक्ति को प्रयासमात्र मानकर तिरस्कार करते है :—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धारपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत्॥

—भाग० ११।१०।१४।

भक्त का हृदय भगवान् के दर्शन के लिए उसी प्रकार छटपटाया करता है, जिस प्रकार पक्षियों के पंखरहित बच्चे माता के लिए, भूख से व्याकुल बछड़े दुध के लिए तथा प्रिय के विरह में व्याकुल सुन्दरी अपने प्रियतम के लिए छटपटाती है :—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

—भाग० ६।११।२६

इस प्रेमाभक्ति की प्रतिनिधि ब्रज की गोपिकाएँ थीं जिनके विमल प्रेम का रहस्यमय वर्णन व्यासजी ने रासपञ्चाध्यायी में किया है। इस प्रकार भक्ति-शास्त्र के सर्वस्व भागवत से भक्ति का रसमय स्रोत भक्तजनों के हृदय को आप्यायित करता हुआ प्रवाहित हो रहा है। भागवत के श्लोकों में एक विचित्र अलौकिक माधुर्य भरा है। अतः भाव तथा भाषा उभयदृष्टि से श्रीमद्भागवत (१२।१३।१८) का कथन यथार्थ है :—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां प्रियं,
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं,
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥